काव्यभेद

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी,
सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

आचार्य मम्मट काव्य-स्वरूप का विवेचन करने के पश्चात् काव्य-भेदों का निरूपण किया है। आचार्य मम्मट के अनुसार काव्य के तीन भेद होते हैं-(१) उत्तमकाव्य (२) मध्यमकाव्य (३) अधम काव्य। इनमें उत्तमकाव्य को ध्वनिकाव्य, मध्यमकाव्य को गुणीभूतव्यंग्य और अधम काव्य को चित्रकाव्य कहते हैं।

उत्तमकाव्य-

उत्तम काव्य के स्वरूप का निर्देश करते हुए आचार्य मम्मट का कथन है-

"इदमुत्तममतिशायिनि व्यंग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः"।

अर्थात् वाच्य अर्थ की अपेक्षा व्यंग्य अर्थ में अधिक चमत्कार होने से वह उत्तम काव्य होता है और विद्वानों ने उसे 'ध्वनिःकाव्य' कहा है।

अपने द्वारा प्रतिपादित लक्षण को स्पष्ट करते हुए आचार्य मम्मट कहते हैं- "इदमिति काव्यम्। बुधैर्व्याकरणैः प्रधानभूतस्फोटरूपव्यंग्यव्यञ्जकस्य शब्दस्य ध्वनिरिति व्यवहारः कृतः। ततस्तन्मतानुसारिभिरन्यैरपि न्यग्भावितवाच्यव्यंग्यव्यञ्जनक्षमस्य शब्दार्थयुगलस्य"।

अर्थात् 'इदम्' पद यहाँ पर काव्य का बोधक है। वैयाकरणों ने प्रधानभूत स्फोट रूप व्यंग्य के व्यंजक (अभिव्यक्त कराने वाले) शब्द के लिए 'ध्वनि' शब्द का व्यवहार (प्रयोग) किया है। इसलिए उनके अनुसरण करने वाले अन्य आचार्य भी वाच्य अर्थ को गौण (अप्रधान) बना देने वाले व्यंग्य अर्थ के व्यंजन (अभिव्यक्ति) में समर्थ शब्दार्थ युगल के लिए 'ध्वनि' शब्द का व्यवहार करते हैं।

आचार्य मम्मट का कथन है कि जहाँ पर वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ में अधिक चमत्कार पाया जाता है, उसे उत्तम काव्य कहा जाता है और वैयाकरण विद्वानों ने उसे 'ध्वनि' नाम से अभिहित किया

है। आनन्दवर्द्धन आदि ध्वनिवादी आचार्यों ने व्याकरणशास्त्र से 'ध्वनि' शब्द ग्रहण किया है। आनन्दवर्द्धन का कहना कि वैयाकरण ही प्रथम विद्वान् हैं जिन्होंने श्रूयमाण वर्णों के लिए 'ध्वनि' शब्द का व्यवहार किया है, उसी प्रकार उनके मत का अनुसरण करने वाले दूसरे काव्यतत्त्ववेत्ता विद्वानों ने भी वाच्य-वाचक, व्यंग्यार्थ, व्यंजना-व्यापार (शब्दात्मा) तथा इन चारों के समुदाय रूप काव्य इन पाँचों को व्यंजकत्व की समानता के कारण ध्वनि कहा है-

"प्रथमे हि विद्वांसो वैयाकरणाः, व्याकरणमूलत्वात्सर्वविद्यानाम्। ते च श्रूयमाणेषु वर्णेषु ध्वनिरिति व्यवहरन्ति। तर्थवान्यैस्तन्मतानुसारिभिः सूरिभिः काव्यतत्त्वार्थदर्शिभिर्वाच्यवाचकसम्मिश्रः शब्दात्मा काव्यमिति व्यपदेश्यो व्यञ्जकत्वसामान्याद् ध्वनिरित्युक्तः"।

आनन्दवर्द्धन के मतानुसार जहाँ पर वाच्य-वाचक शब्द अपने को तथा अपने अर्थ को गौण बनाकर व्यंग्य अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं, उस काव्य-विशेष को 'ध्वनि' कहते हैं-

यथार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः।।

अभिनवगुप्त ने 'ध्वनि' शब्द का व्युत्पत्ति-परक अर्थ करके ध्वनि के अन्तर्गत शब्द, अर्थ और व्यापार तीनों का समावेश कर दिया है। तदनुसार **'ध्वनति इति ध्वनिः'** इस व्युत्पत्ति के अनुसार ध्वनि शब्द का अर्थ वाचक शब्द और वाच्य अर्थ होता है। **'ध्वन्यते इति ध्वनिः'** इस व्युत्पत्ति के अनुसार इसका अर्थ 'व्यंग्यार्थ' होगा, **'ध्वननं ध्वनिः'** इस व्युत्पत्ति के अनुसार इसका अर्थ 'व्यञ्जनरूप शब्द व्यापार' होगा। इस प्रकार ध्वनिवादियों के अनुसार शब्द, अर्थ, व्यंग्य और व्यञ्जनाव्यापार इन चारों के समुदाय रूप काव्य को 'ध्वनि' कहते हैं।

वैयाकरणों ने स्फोट रूप शब्द के व्यञ्जक शब्द को 'ध्वनि' कहा है-**'ध्वनति स्फोटं व्यनक्ति इति ध्वनिः'**। तदनुसार ध्वनिवादी आचार्यों ने भी व्यङ्ग्यार्थ के व्यञ्जक शब्द और अर्थ के लिए 'ध्वनि' पद का व्यवहार प्रारम्भ कर दिया। वैयाकरणों के अनुसार जिनसे अर्थ की प्रतीति हो, उसे 'स्फोट' कहते हैं-**'स्फुटत्यर्थो यस्मात् स स्फोटः'**। भर्तृहरि ने नित्य स्फोट रूप शब्द के प्रकाशक श्रूयमाण वर्णों को 'ध्वनि' कहा है। अब प्रश्न यह है कि श्रोत्रग्राह्य वर्ण (ध्वनि) के बाद जब दूसरे वर्ण का उच्चारण किया

जाता है तो प्रथम वर्ण नष्ट हो जाता है तो समुदाय रूप वर्ण समूह की एक एक साथ उपस्थिति कैसे हो सकती है? इसी प्रकार अनेक पद समूह रूप वाक्य की भी उपस्थिति नहीं होगी तब पदार्थ या वाक्यार्थ की प्रतीति कैसे होगी? इसके समाधान के लिए वैयाकरणों ने 'स्फोटवाद' की कल्पना की है। उनका कहना है कि पूर्व वर्णों के अनुभव से उत्पन्न संस्कारों के सहित अन्तिम वर्ण के अनुभव से पद की प्रतीति होती है, उसे ही 'स्फोट' कहते हैं। वह ध्वन्यात्मक स्फोट रूप शब्द नित्य एवं ब्रह्मस्वरूप है। इस प्रकार वर्णसमुदाय रूप पदों से स्फोटरूप नित्य शब्द की प्रतीति होती है।

इस स्फोट रूप शब्द के व्यंजक भिन्न-भिन्न स्थानों से उच्चार्यमाण वर्णसमुदाय रूप 'गो' आदि शब्दों को वैयाकरण लोग 'ध्वनि' कहते हैं क्योंकि स्फोट की अभिव्यक्ति श्रोत्रग्राह्य वर्ण (ध्वनि) से होती है। इस प्रकार व्याकरणशास्त्र में स्फोट की अभिव्यक्ति शब्द से होने के कारण वैयाकरण लोग स्फोट के व्यंजक शब्द के लिए 'ध्वनि' का प्रयोग करने लगे जैसा कि महाभाष्य में पतंजलि ने कहा है-
"प्रतीतपदार्थको लोकेः ध्वनिः शब्द इत्युच्यते । शब्दं कुरु शब्दं मा कार्षीः शब्दकार्ययं माणवकः इति ध्वनिं कुर्वन्नेवमुच्यते। तस्मात् ध्वनिः शब्दः"।

आचार्य मम्मट ध्वनिकाव्य का उदाहरण देते हैं-

निःशेषच्युतचन्दनं स्तनतटं निर्मृष्टरागोऽधरो नेत्रे दूरमनञ्जने पुलकिता तन्वी तवेयं वपुः।
मिथ्यावादिनि दूति बान्धवजनस्याज्ञातपीडागमे वापीं स्नातुमितो गतासि न पुनस्तस्याधमस्यान्तिकम्।।

अर्थात् हे दूति! तुम्हारे स्तनों के किनारों पर लगा हुआ चन्दन पूरा छूट गया है; तुम्हारे अधरों की लाली छूट गई है, तेरी आँखों का अंजन बिल्कुल पुछ गया है और तुम्हारा कृशशरीर पुलकित हो गया है। अरे अपनी सखी की पीड़ा को न समझने वाली, झूठ बोलने वाली दूति! तु तो बावड़ी में स्नान करने गई थी, न कि उस नीच (अधम) के पास।

यहाँ पर "उस नायक के पास रमण करने के लिए गई थी" यह अर्थ 'अधम' पद के द्वारा अभिव्यक्त होता है –"अत्र तदन्तिकमेव रन्तुं गतासीति प्रधायेनाधमपदेन व्यज्यते"।

यह श्लोक 'अमरुशतक' से उद्धृत है। आचार्य मम्मट ने इसे उत्तम काव्य (ध्वनिकाव्य) के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है। कोई विदग्धा नायिका अपने प्रियतम को बुलाने के लिए अपनी

प्रिय सखी को भेजती है। उसकी सखी उस नायक के पास जाकर स्वयं रमण करके लौट आती है और नायिका से झूठ बोलती है कि मेरे बहुत अनुनय-विनय करने पर भी वह नहीं आया। किन्तु नायिका उसकी झूठ बातें समझ जाती है और फटकारती हुई कहती है कि अरे झूठ बोलने वाली दूति! तू तो बावड़ी में स्नान करने के लिए गई थी, उस नीच के पास थोड़े गई थी, क्योंकि तुम्हारे स्तनों के किनारे पर लगा चन्दन छूट गया है, ओठ की लाली धुल गई है, आँखों का अंजन भी पुछ गया है और तुम्हारी पतली देह रोमांचित हो गई है। यहाँ पर 'तू यहाँ से बावड़ी में स्नान करने के लिए गई थी, उस अधम के पास नहीं गई थी' यह (निषेध रूप) वाच्यार्थ है। इस वाच्यार्थ को दवाकर यह व्यंग्यार्थ ध्वनित हो रहा है कि 'तू उस अधम के पास रमण करने के लिए गई थी' क्योंकि स्नान से तो चन्दनादि पूर्ण रूप से छूट जाते हैं) किन्तु तुम्हारी जो दशा है वह स्नान के बाद की नहीं प्रतीत होती। अतः तू उस नीच के पास संभोग के लिए गई थी, यह बात 'अधम' पद के द्वारा अभिव्यक्त हो रही है-"अत्र तदन्तिकमेव रन्तुं गतासीति प्राधान्येनाधमपदेन व्यजयते"।

यहाँ पर वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ अधिक चमत्कार-जनक है। प्रधानतया 'अधम' पद के द्वारा यह अभिव्यक्त होता है कि 'तू रमण के लिए ही गई थी'। 'अधम' पद के वाच्यार्थ दुःख प्रयोजक कर्मशील (दुःखदायक कर्म करने वाला) की अपेक्षा 'अधम' पद का व्यंग्यार्थ 'अन्य नायिका के सम्भोग के द्वारा पीड़ा को उत्पन्न करने वाला' अधिक चमत्कारजनक है। यहाँ मुख्य रूप से 'अधम' पद ही व्यंजक है।

मध्यमकाव्य (गुणीभूतव्यङ्ग्यकाव्य)-

मध्यमकाव्य का लक्षण प्रस्तुत करते हुए आचार्य मम्मट का कथन है-**"अतादृशि गुणीभूतव्यंग्यं व्यंग्ये तु मध्यमम्"**। अर्थात् जहाँ पर वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ में अधिक चमत्कार नहीं पाया जाता, उसे 'मध्यम-काव्य' कहते हैं। इसे ही 'गुणीभूतव्यंग्य' भी कहते हैं।

'अतादृशि' को स्पष्ट करते हुए आचार्य मम्मट का कथन है-**"अतादृशि वाच्यादनतिशायिनि"।** अर्थात् अतादृशि- वैसा न होने पर अर्थात् व्यंग्यार्थ के अधिक चमत्कार जनक न होने पर गुणीभूतव्यंग्य काव्य होता है।

आचार्य मम्मट मध्यम काव्य का लक्षण करते हुए कहते है कि जहाँ पर वाच्यार्थ के चमत्कार की अपेक्षा व्यंग्यार्थ अधिक चमत्कारजनक नहीं होता उसे गुणीभूतव्यंग्य कहते हैं। भाव यह है कि गुणीभूतव्यग्य में व्यंग्यार्थ गौण (अप्रधान) हो जाता है और वाच्यार्थ अधिक चमत्कारजनक होता है। उपर्युक्त कथन का तात्पर्य यह है कि जहाँ पर व्यंग्यार्थ की प्रधानता होती है और वह वाच्यार्थ से अधिक चमत्कार-जनक होता है, उसे उत्तम काव्य या ध्वनिकाव्य कहते हैं और जहाँ पर व्यंग्यार्थ अप्रधान (गौण) हो जाता है तथा वाच्यार्थ अधिक चमत्कार-जनक होता है, उसे मध्यमकाव्य वा गुणीभतव्यंग्य काव्य कहते हैं। मम्मट ने ध्वनिकाव्य तथा गुणीभूतव्यंग्य काव्य में व्यंग्यार्थ की प्रधानता और अप्रधानता का अन्तर स्थापित किया है। ध्वनिकार आनन्दवर्द्धन की भी यही मान्यता है जैसा कि कहा है-'व्यंग्यार्थस्य प्राधान्ये ध्वनिसंज्ञितः काव्यप्रकारः, गुणभावे तु गुणीभूतव्यंग्यता'। इस प्रकार ध्वनिकार ने व्यंग्यार्थ-प्रधान काव्य को ध्वनिकाव्य तथा व्यंग्यार्थ के गुणीभूत (गौण, अप्रधान) होने पर गुणीभूतव्यंग्य कहा है। उन्होंने गुणीभूतव्यंग्यकाव्य को कम चमत्कार न मानकर उसे ध्वनि का निष्यन्द कहा है-'तदयं ध्वनिनिष्यन्दरूपो द्वितीयोऽपि महाकविविषयोऽतिरमणीयो लक्षणीयः सहृदयैः'।

इस प्रकार चित्रकाव्य में भी व्यंग्य तो रहता है किन्तु उसकी स्फुट प्रतीति नहीं होती तो उसे 'मध्यमकाव्य' क्यों नहीं कहते? इसी प्रकार पर्यायोक्त आदि अलंकारों में भी व्यंग्य के गुणीभूत होने से उसे 'मध्यमकाव्य' क्यों नहीं कहते? इस पर कहते हैं कि गुणीभूतव्यंग्य तथा चित्रकाव्य का विषय अलग-अलग होता है। जहाँ पर व्यंग्य गुणीभूत (गौण) होने पर भी साक्षात् चमत्कारजनक होता है, वहाँ गुणीभूतव्यंग्य का विषय होता है और जहाँ पर व्यंग्य वाच्यार्थ के द्वारा चमत्कारजनकता में वाच्य का सहायक होता है, साक्षात् स्वयं चमत्कार-जनक नहीं होता, वह चित्रकाव्य का विषय होता है। इस प्रकार चमत्कारविविधता का तारतम्य ही विषय विभाजन का आधार होने से गुणीभूतव्यंग्य तथा चित्रकाव्य का विषय पृथक-पृथक् होता है।

गुणीभूतव्यंग्य का उदाहरण-

ग्रामतरुणं तरुण्या नववंजुलमंजरीसनाथकरम्।
पश्यन्त्या भवति मुहुर्नितरां मलिना मुखच्छाया।।

अत्र वंजुललतागृहे दत्तसंकेता नागतेति व्यंग्यं गुणीभूतम्, तदपेक्षया वाच्यस्यैव चमत्कारित्वात्।

अर्थात् वेतस (अशोक) लता की मंजरी को हाथ में लिये ग्राम के उस नवयुवक को देखती हुई उस तरुणी के मुख की कान्ति (छवि) अत्यन्त मलिन (धूमिल) होती जा रही है। यहाँ पर 'अशोक (वंजुल) लतागृह में मिलने का संकेत देकर भी नहीं आयी' यह व्यंग्यार्थ गौण हो गया है और उसकी अपेक्षा वाच्यार्थ अधिक चमत्कारी है'।

प्रस्तुत उदाहरण रुद्रट के काव्यालंकार से उद्धृत किया गया है। कोई युवती वेतस लतागृह में ग्राम के तरुण (युवक) से स्वयं मिलने का समय देकर गृहकार्य में व्यग्र होने के कारण संकेत-स्थान पर नहीं पहुँची और तरुण (युवक) वहाँ पहुंच गया था। तरुणी के संकेत स्थान पर न आने का और स्वयं के पहुँचने की बात सूचित करने के लिए वहां से वेतस-लता की मंजरी को हाथ में लेकर आये हुए नायक (तरुण) को बार-बार चंचल नेत्र से देखती हुई उस तरुणी की मुख की कान्ति अत्यन्त मलिन हो गई। यहां पर 'ग्रामतरुण' पद के द्वारा यह अभिव्यक्त होता है कि उस ग्राम में एक ही युवक है और वह अनेक युवतियों के द्वारा प्रार्थ्यमान होने से अत्यन्त दुर्लभ है, लोगों के देखने के भय से बार-बार दर्शन भी सुलभ नहीं है, दोनों के तरुण होने से दोनों में परस्पर अनुरागातिशय द्योतित होता है, अशोक-मंजरी के दर्शन से मुख मालिन्य होना कार्य-कारण भाव के पौर्वापर्य के वैपरीत्य होने से अतिशयोक्ति अलंकार ध्वनित होता है, किन्तु ग्रामतरुण के अशोक-मंजरी के प्रदर्शन से अशोक लताकुंज में किसी कारण से न पहुँच सकने वाली ग्रामतरुणी की मुख-कान्ति का अधिक मालिन्य होना चमत्कारजनक है। अतः यहाँ व्यंग्यार्थ की अपेक्षा वाच्यार्थ चमत्कारी होने से गुणीभूतव्यंग्य है।

अधमकाव्य (चित्रकाव्य)-

चित्रकाव्य को परिभाषित करते हुए आचार्य मम्मट का कथन है-

शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यङ्ग्यं त्ववरं स्मृतम्।

चित्रमिति गुणालंकारयुक्तम्। अव्यंग्यमिति स्फुटप्रतीयमानरहितम्।

अर्थात् व्यङ्ग्य से रहित काव्य अधमकाव्य (अवरकाव्य) कहा गया है। इसे ही विद्वानों ने चित्रकाव्य कहा है। यह दो प्रकार का होता है-शब्दचित्र और वाच्यचित्र।

यहाँ पर 'चित्र' शब्द का अभिप्राय गुण और अलंकार युक्त होना से है और 'अव्यङ्ग्य' शब्द का अभिप्राय स्फुट प्रतीयमान अर्थ से रहित है। 'अवर' का अर्थ 'अधम' है।

आचार्य मम्मट ने गुणव्यञ्जक, अलङ्कारयुक्त, व्यङ्ग्यरहित काव्य को अधमकाव्य कहा है। यहाँ पर अव्यङ्ग्य (व्यङ्ग्यरहित) का अर्थ व्यङ्ग्य का अभाव नहीं है, बल्कि स्फुट प्रतीयमान अर्थ से रहित है क्योंकि ऐसा कोई भी काव्य नहीं है जिसमें व्यङ्ग्य न हो। इस प्रकार जहां पर व्यङ्ग्यार्थ की स्पष्ट प्रतीति न हो उसे अधम काव्य कहते हैं। प्रदीपकार का कथन है कि व्यङ्ग्य के अस्फुट होने पर अस्फुट गुणीभूतव्यङग्य का विषय हो जायगा तो इसे अवर काव्य कैसे कहेंगे? इस पर कहते हैं कि यहाँ पर कवि का तात्पर्य व्यङ्ग्यार्थ में नहीं है, बल्कि अनुप्रासादि अलङ्कार में ही विवक्षा है। ध्वनिकार का भी कथन है कि चित्रकाव्य में रस भावादि का तात्पर्य विवक्षित नहीं होता, और न किसी व्यंग्य विशेष के प्रकाशन का सामर्थ्य ही विवक्षित रहता है। उसमें तो केवल शब्दवैचित्र्य और अर्थवैचित्र्य का चमत्कार ही विवक्षित रहता है। मम्मट ने व्यङ्ग्यार्थ की प्रधानता और अप्रधानता के आधार पर काव्य के दो भेद किये हैं- ध्वनिकाव्य और गुणीभूतव्यंग्यकाव्य। इनके अतिरिक्त व्यंग्यार्थ की विवक्षा से शून्य 'चित्रकाव्य' नामक तृतीय भेद स्वीकार करते हैं जिसके 'शब्दचित्र' और 'वाच्यचित्र' दो भेद स्वीकार करते हैं। ध्वनिकार ने व्यंग्यार्थ की विवक्षा से शून्य काव्य को चित्रकाव्य इसलिए कहा है कि उसमें अन्तस्तत्त्व का अभाव रहता है। मम्मट के अवर काव्य को ध्वनिकार ने चित्रकाव्य कहा है और उसके दो भेद स्वीकार किये हैं- शब्दचित्र और वाच्यचित्र ।

शब्दचित्र का उदाहरण-

स्वच्छन्दोच्छलदच्छकच्छकुहरच्छातेतराम्बुच्छटामूर्च्छन्मोहमहर्षिहर्षविहितस्नानाह्निकाय वः।
भिद्यादुधदुदारदर्दुरदरीदीर्घादरिद्रद्रुमद्रोहोद्रेकमहोर्मिमेदुरमदामन्दाकिनी मन्दताम्।।

अर्थात् स्वच्छन्द रूप से उछलती हुई किनारों के गड्ढे में अत्यन्त वेग से प्रवाहित होने वाली स्वच्छ जलधारा की छटा से विगत मोह वाले महर्षियों के सहर्ष स्नान तथा दैनिक कार्यों को सम्पन्न करने वाली जहाँ तहाँ दिखाई पड़ने वाले मेढ़कों से भरी बड़ी-बड़ी दरारों से युक्त, बड़े-बड़े वृक्षों को उखाड़ फेंकने में निरत, ऊपर उठने वाली बड़ी-बड़ी तरंगों से उन्मत्त मन्दाकिनी गंगा आप लोगों के पापों को नष्ट करें।

यहाँ पर यदि मन्दाकिनी-विषयक रतिभाव की प्रतीति तथा अन्य तीर्थों की अपेक्षा मन्दाकिनी के वर्णन की अधिकता (विशेषता) के कारण व्यतिरेकालंकार, ये दोनों व्यंग्य हैं, तथापि यह व्यंग्य अस्फुटतर है और व्यंग्य में कवि का तात्पर्य नहीं प्रतीत होता। कवि का तात्पर्य तो अनुप्रास अलंकार के चमत्कार प्रदर्शन में ही है। अतः अनुप्रास-प्रदर्शन मात्र कवि का तात्पर्य होने से व्यंग्य तिरोहित हो गया है। यहाँ पर 'स्वच्छन्दोच्छलदच्छकच्छ .....' में छकार का 'मोहमहर्षिहर्ष' में हकार का 'उधदुदारदर्दुरदरी' में दकार का प्रचुर प्रयोग होने से अनुप्रास अलंकार है। शब्द आश्रित होने के कारण यह शब्दालंकार है। यहाँ पर कवि का अभिप्राय केवल शब्दचित्रण में ही दिखाई देता है। अतः यह 'शब्दचित्र' नामक अधमकाव्य का उदाहरण है।

वाच्यचित्र का उदाहरण-

विनिर्गतं मानदमात्ममन्दिराद् भवत्युपश्रुत्य यदृच्छयापि यम्।
ससम्भ्रमेन्द्रद्रुतपातितार्गला निमीलिताक्षीव भियामरावती।।

अर्थात् शत्रुओं के मान-मर्दन करने वाले हयग्रीव को स्वेच्छा से घूमने के लिए अपने महल से निकला हुआ सुनकर घबड़ाये हुए इन्द्र ने जिसकी अर्गला गिरा दी है, ऐसी अमरावती नगरी मानो भय के कारण द्वार रूपी आँखें बन्द कर ली हैं।

यहाँ पर 'निमीलिताक्षीव' में उत्प्रेक्षा अलंकार है। यह अर्थ के आश्रित होने से अर्थालंकार है। यद्यपि यहाँ पर वीररस की प्रतीति हो रही है अतः रसध्वनि की प्रतीति होने से व्यंग्य है। किन्तु कवि का तात्पर्य उत्प्रेक्षा के चमत्कार प्रदर्शन में ही है। इसलिए वीररस की प्रतीति होने पर भी (व्यंग्यार्थ के सद्भाव में भी) उसमें कवि का तात्पर्य न होने से इसे अर्थचित्र का उदाहरण कहना चाहिए क्योंकि उत्प्रेक्षा ही यहाँ पर चमत्कार-जनक है और उसी में कवि का तात्पर्य होने वीररसादिग्रन्थरूप व्यंग्य तिरोहित हो गया है। अतः यह अव्यंग्य चित्रकाव्य है।